देवर्षि नारद और उनकी वीणा

हज़ारों वर्ष पूर्व, प्राचीन भारत के मैदानी व पर्वतीय क्षेत्रों में, भगवान श्रीविष्णु ने, श्रीकृष्ण के रूप में इस धरा पर अवतार लिया था। वे दिव्य प्रेम व प्रज्ञान के मूर्तरूप थे, धर्म के संस्थापक तथा योगेश्वर थे।

भगवान श्रीविष्णु के एक समर्पित भक्त और सेवक थे, नारद मुनि। नारद जी, देवताओं के ऋषि अर्थात् देवर्षि तथा संगीतज्ञ और अपने युग के सर्वाधिक प्रवीण वीणा-वादक थे। ऐसा कहा जाता है कि जब वे वीणा-वादन करते, ब्रह्माण्डीय संगीत के स्वर सुनाई देने लगते। उन्हें कई सिद्धियों का स्वामी भी माना जाता था। नारद मुनि को भगवान श्रीविष्णु के प्रति प्रगाढ़ प्रेम था—वस्तुतः, उनका यह मानना था कि वे भगवान श्रीविष्णु जी के सबसे निष्ठावान भक्त हैं।

और ऐसी महानता होने के बावजूद, देवर्षि नारद को एक पाठ सीखना अभी बाक़ी था।

एक दिन, जब भगवान श्रीकृष्ण का विवाह होने जा रहा था, उन्होनें वीणा-वादन के लिए नारद जी को आमन्त्रित किया।

आमन्त्रण पाकर नारद जी ने स्वयं को धन्य महसूस किया और तुरन्त ही आमन्त्रण को स्वीकार किया। किन्तु उन्हें थोड़ा आश्चर्य तब हुआ जब उन्होंने विवाह-स्थल के बारे में सुना। विवाह किसी नगर या राजमहल में न होकर बड़ी दूर, हिमालय की तलहटी में बसे एक गाँव में सम्पन्न होने वाला था। महर्षि जब वहाँ पहुँचे तो उन्हें लगा कि सम्भवतः वे किसी ग़लत जगह पर पहुँच गए हैं—वह स्थान बिलकुल छोटा व साधारण था। किन्तु वहाँ पेड़ों के बीच लालटेनें लटक रही थीं और कहीं दूर से उन्हें संगीत के स्वर भी सुनाई दे रहे थे।

कुछ बच्चे दौड़कर नारद जी के पास आए और उन्हें बताया कि उनके मुखिया की बेटी का विवाह उसी दिन भगवान श्रीकृष्ण के साथ सम्पन्न होने वाला है। वे बच्चे नारद जी को उस झोपड़ी में ले गए जहाँ भगवान श्रीकृष्ण ठहरे हुए थे।

“नारद जी, बहुत अच्छा हुआ जो आप आ गए! ” भगवान श्रीकृष्ण ने कहा।

“आमन्त्रण पाकर मैं धन्य हुआ, भगवन्” नारद जी ने कहा। किन्तु वे मन ही मन सोच रहे थे कि भगवान श्रीकृष्ण की बात तो दूर, पर वे खुद ऐसे स्थान पर क्या कर रहे हैं।

“आइए, इस परिवार से मिलिए,” भगवान श्रीकृष्ण ने कहा। वे नारद जी से सभी ग्रामवासियों का

परिचय कुछ इस तरह करा रहे थे कि मानो वे सभी कोई बड़े राजसी लोग हों।

शीघ्र ही समारोह आरम्भ हुआ। भगवान श्रीकृष्ण और उनकी नववधू को जंगली पुष्पों से बने हार पहनाए गए। ग्रामवासी भोजन, फूल और साधारण-से उपहार लेकर नवदम्पति के चारों ओर एकत्रित हुए। फिर वहाँ दावत के साथ-साथ नृत्य, गायन व खेलों का आयोजन शुरू हुआ। समारोह देर रात तक चलता रहा। पूरा वातावरण हँसी व प्रेम तथा मधुर संगीत से भरे गीतों से सराबोर हो चुका था।

फिर भी नारद जी स्वयं को इन सबसे अलग महसूस कर रहे थे। उनका स्वागत बड़े ही आदर-सत्कार के साथ किया गया था, परन्तु उन्हें ये वनवासी लोग अशिष्ट व शोर-शराबा करने वाले लग रहे थे। उनके रीति-रिवाज अजीब-से थे। इसलिए जब भगवान श्रीकृष्ण ने उन्हें विवाह में आए अतिथियों के लिए वीणा बजाने हेतु कहा तो नारद मुनि बोले कि वे थक गए हैं। उन्हें लगा कि उनका उत्कृष्ट वीणा-वादन निश्चित ही इस प्रकार के जनसमूह के लिए अति उच्च है, और यह उन ग्रामवासियों के लिए है ही नहीं।

भगवान श्रीकृष्ण नारद जी के बहाने को समझ गए। वे दूसरे अतिथियों की ओर मुड़े। उन्होंने पूछा, "क्या यहाँ कोई और है जो वीणा बजाना जानता है?"

"एक अतिथि—वधू के चाचा—ने अपना हाथ उठाया। डील-डौल से बलशाली दिखने वाला वह व्यक्ति बढ़ई का काम करता था, अपने काम की वजह से उसके हाथ जगह-जगह से कटे-पिटे थे और अंगुलियों के नाखून खुरदरे थे। "अपनी वीणा उसे दे दीजिए," भगवान श्रीकृष्ण ने नारद जी से कहा।

नारद जी ने अविश्वास भरी नज़रों से भगवान की ओर देखा। "मेरी वीणा उसके लिए बहुत ही नाजुक है, प्रभु। वह इसे ख़राब कर देगा!" उन्होंने धीमे-से कहा।

"अपनी वीणा उसे दीजिए," भगवान श्रीकृष्ण ने एक बार फिर से कहा। मन मारकर नारद जी ने भगवान के आदेश का पालन किया।

उस व्यक्ति ने बड़े ही आदर के साथ अपनी हथेलियाँ फैलाकर वीणा को ग्रहण किया। धीरे-से व सावधानीपूर्वक, उसने वीणा को अपने सिर से लगाकर प्रणाम किया। उसने कभी भी इतना सुन्दर वाद्ययन्त्र नहीं देखा था। अत्यन्त स्नेह भरी दृष्टि से नारद जी को देखकर वह मुस्कराया और वीणा बजाने के लिए पास की एक चट्टान पर जाकर बैठ गया।

वह अपने नाखूनों से वीणा को स्पर्श नहीं करना चाहता था, इसलिए उसने अपनी उँगलियों के पिछले

हिस्से से वीणा बजाना शुरू किया। नारद नाखुश थे : उनके हिसाब से उस व्यक्ति का बजाने का वह तरीक़ा सही *नहीं* था! नारद जी उस वादन को सुनना ही नहीं चाहते थे, इसलिए वे वहाँ से थोड़ी दूर चले गए। उनका इस बात पर ध्यान ही नहीं गया कि विवाह में शामिल अन्य सभी मेहमान शान्त होकर सुन रहे हैं।

वह व्यक्ति भगवन्नाम गा रहा था। उसकी आँखें बन्द थीं, उसका शरीर झूम रहा था और प्रेम व ललक भरी सुमधुर आवाज़ में वह गाता ही जा रहा था। ऐसा लग रहा था मानो वह ख़ुद, उसका स्वर और वह वीणा एक हो गए हों। भगवान श्रीकृष्ण बड़े प्रेम से व ध्यानपूर्वक सुन रहे थे।

वह व्यक्ति गाता रहा, उसकी आवाज़ भक्तिभाव से इतनी परिपूर्ण थी कि वहाँ उपस्थित मेहमानों की आँखों से आँसू छलक उठे। उसके संगीत की झंकार ने पूरे वातावरण को जगमगा दिया। यहाँ तक कि उसके संगीत की झंकार से उस चट्टान का कण-कण हिल उठा जिस पर वह बैठा था। चट्टान नर्म होकर पिघलने लगी।

अन्ततः उस व्यक्ति का गायन समाप्त हुआ। अतिथिगण बिलकुल शान्त होकर बैठे थे, संगीत के अन्तिम स्वर धीरे-धीरे रात के वातावरण में समा रहे थे। वे लोग उस प्रशान्ति में कुछ पल बैठे रहे। फिर वह व्यक्ति उठा और उसने भगवान श्रीकृष्ण को, उनकी नववधू को, तथा वहाँ उपस्थित हरेक को प्रणाम किया। उसे नारद जी दिखाई नहीं दिए, अतः उसने वीणा को सावधानी से चट्टान पर रख दिया और आहिस्ता-से एकान्त में जाकर बैठ गया।

"नारद जी," भगवान श्रीकृष्ण ने पुकारा। "अब आप अपनी वीणा ले सकते हैं।"

नारद जी आगे बढ़े, किन्तु उस व्यक्ति के गायन समाप्त करने के बाद वह चट्टान फिर से कठोर हो गई और वीणा उसमें धँस गई थी।

भगवान श्रीकृष्ण ध्यान से देख रहे थे, उनके मुखमण्डल पर एक व्यंग्यभरी मुस्कान थी। "अरे नारद जी, अब क्या होगा?" वे बोले।

नारद जी वीणा को खींचने लगे परन्तु वह टस से मस न हुई। वहाँ मौजूद सभी लोग हँसने लगे। एक महान ऋषि जो अपनी असाधारण सिद्धियों के लिए विख्यात थे, वे एक चट्टान पर से अपनी वीणा तक को नहीं उठा पा रहे थे! नारद जी को बड़ी शर्मिन्दगी महसूस हो रही थी।

आश्चर्य से अपनी आँखें फैलाए वे याचनाभरे स्वर में बोले, "मुझे समझ नहीं आ रहा है कि क्या

हुआ है।"

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा, "नारद जी, अब *आप* क्यों नहीं गाते, जिससे चट्टान फिर से पिघल जाए और आपकी वीणा छूट जाए?"

अतः नारद जी गाने लगे, किन्तु वे तो घमण्ड और शर्म की आग में जल रहे थे। वे न तो ध्यान से गा पा रहे थे और न ही उनमें प्रेम का भाव जग रहा था। चट्टान वैसी की वैसी कठोर ही बनी रही और वीणा उसमें धँसी रही। अन्ततः उन्होंने अपनी पराजय स्वीकार की।

"यदि आपको अपनी वीणा चाहिए तो आपको अपने इस बन्धु से पुनः वीणा बजाने का अनुरोध करना होगा," भगवान श्रीकृष्ण ने बड़ी मृदुलता से कहा।

नारद जी उस व्यक्ति के पास, उस दूसरे संगीतज्ञ के पास गए और विनम्रतापूर्वक बोले, "आप वह कर सकते हैं जो मैं नहीं कर सकता। आपका संगीत एक चट्टान को पिघला सकता है। कृपया पुनः अपने संगीत से मेरी वीणा को छुड़ा दीजिए।"

अतः उस व्यक्ति ने पुनः आकर गाना आरम्भ किया। एक बार फिर उसके स्वर में भगवान के प्रति उसका प्रेम प्रवाहित होने लगा और इससे श्रोताओं के हृदय के साथ-साथ वह चट्टान भी पिघलने लगी।

नारद जी निकट बैठकर उस व्यक्ति को ध्यान से देख रहे थे।

इस बार, नारद जी को उस व्यक्ति की आवाज़ में भक्ति का स्वर सुनाई दिया। उन्हें उस व्यक्ति के मुख पर प्रेम की झलक और बजाने वाले हाथों में सुन्दरता दिखने लगी।

नारद मुनि अलाव के प्रकाश में, आस-पास बैठे सभी लोगों के चेहरे देख रहे थे—उन लोगों के चेहरे जिन्हें वे अजीब और गँवार समझ रहे थे, उन सब लोगों में भी अब उन्हें भगवत्प्रकाश के दर्शन हो रहे थे।

उन्हें अपने अन्तर में अपरिमित कृतज्ञता उमड़ती महसूस हुई। उनके गालों पर से अश्रुधाराएँ बह रही थीं और फिर, उन्हें महसूस हुआ कि वे स्वयं प्रेम से भर गए हैं—भगवान श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम, वीणा बजाने वाले उस व्यक्ति के प्रति प्रेम, गाँव के लोगों के प्रति, स्वयं अपने प्रति और वन, पर्वत तथा आकाश के प्रति प्रेम।

उस दिन से, नारद जी को एक श्रेष्ठतर समझ प्राप्त हुई कि प्रेम व भक्ति के साथ भगवन्नाम का संकीर्तन करने का क्या अर्थ है। आगे चलकर उन्होंने उपदेश दिया कि एक बार विशुद्ध प्रेम का अनुभव हो जाने पर साधक सर्वत्र ईश्वर के दर्शन करता है। नारद जी ने अपने उपदेश प्रदान करने के लिए एक महान ग्रन्थ

की रचना की, जो है : 'नारद भक्तिसूत्र।'

देवर्षि नारद कहते हैं,

"भक्तिमार्ग, ईश्वर प्राप्ति का सबसे सुलभ उपाय है।"

सूत्र ५८

इसी के साथ यह कहानी समाप्त होती है, जिसका शीर्षक है, "देवर्षि नारद और उनकी वीणा।"

© २०२४ एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन®। सर्वाधिकार सुरक्षित।